SJIF 2014 = 3.189
ISSN: 2348-3083
An International Peer Reviewed & Referred
SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL FOR HUMANITY SCIENCE & ENGLISH LANGUAGE

अर्वाचीन योग पद्धति में हठयोग साधना

डॉ0 घनश्याम सिंह सोनी,

योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा संकाय अध्यक्ष, मानव भारती विश्वविद्यालय सोलन, हिमाचल प्रदेश 173229

Abstract

जब हम योगी के व्यक्तित्त्व की बात करते हैं, तो प्रश्न उठता है, कि ऐसे कौन से लक्षण हैं, जिस आधार पर किसी व्यक्ति को योगी कहा जा सके ? योग–साधना से व्यक्ति के व्यक्तित्त्व में कौन–कौन से लक्षण प्रकट होते हैं ? इस प्रश्न पर जब हम विचार करते हैं, तो गीता के अनुसार ही हमें इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त हो जाता है, कि जब योग सिद्ध पुरुष का व्यवहार सम् होता है, जब उस व्यक्ति की बुद्धि समत्त्व की स्थिति को प्राप्त कर लेती है। वह प्रत्येक पदार्थ में समान–भाव रखता है। ऐसा सम–भाव रखने वाला व्यक्ति सभी में परमात्मा के दर्शन करता है। वह 'नर' को 'नारायण' का ही अवतार समझता है। किसी के भी प्रति उसके मन में घृणा या द्वेष के भाव उत्पन्न नहीं होते हैं। योगी सबको अपने ही समान समझता है। ऐसा व्यक्ति सभी अवस्थाओं में समान बना रहता है। उसे लाभ हो या हानि, सु:ख हो या दु:ख हो, गीत हो या उष्णता हो, भूख हो या प्यास हो आदि इन सभी द्वन्द्वों में भी योगी के चित्त में समान अवस्था ही विद्यमान रहती है।

योग सिद्ध पुरुष के कर्म अनासक्त होते हैं। वह संसार में कर्म करता हुआ भी उनमें लिप्त नहीं रहता है। जिस प्रकार पानी में रहते हुए भी कमल का पत्ता गीला नहीं होता है, बिल्कुल ठीक वैसे ही योगी पुरुष संसार में रहता हुआ भी उस जगत् में कदापि भी लिप्त नहीं होता है।

Key words :- *योग–साधना, समान–भाव, समत्त्व की स्थिति, अनासक्त कर्म, हठयोगी पुरूष।*

Scholarly Research Journal's Is Licensed Based On A Work At Www.Srjis.Com

हठयोग साधना

लघुत्वमारोग्यम लोजुपत्वं वर्णप्रसादः स्वरसौष्ठवम्च ।।

गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्यं योगप्रकृतिं प्रथमां वदन्ति ।।

श्वेताश्वतरोपनिषद 2/13

अथात् :– श्वेताश्वतरोपनिषद में योगी के व्यक्तित्त्व का उल्लेख किया गया है कि योग साधना के पश्चात् साधक का शरीर हल्का हो जाता है। शरीर नि:रोग हो जाता है। किसी प्रकार की शारीरिक या मानसिक व्याधि से भी छुटकारा होता है। शरीर में मन और बुद्धि की चंचलता नष्ट होकर स्थिरता को प्राप्त हो जाती है। उसके शरीर का रंग इतना काँतिमय हो जाता है, जो प्रत्येक की आँखों को प्रिय भी लगता है, उसका स्वर भी मधुरतम् हो जाता है। योगी के शरीर से एक

अद्वितीय सी सुगन्ध आने लगती है। उसके शरीर में मल–मूत्र की कमी होती है। यह सभी लक्षण योग की प्रथम अवस्था में दिखाई देने लगते हैं। इसी विषय में श्वेताश्वतोपनिषद् में कहा है। जैसे :–

न तस्य रोगो न जरा न मृत्यु :।

प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।।

श्वेताश्वतोपनिषद 2/12

अर्थात् :– योग की सिद्धी हो जाने पर व्यक्ति के शरीर में किसी प्रकार का कोई भी रोग नहीं रहता है, और न ही बुढ़ाप्पा जल्दी आता है, और न ही मृत्यु प्राप्त होती है, अर्थात् व्यक्ति अमरता की ओर बढ़ता है। अर्थात् व्यक्ति अपनी शारीरिक मृत्यु पर पूर्णतयः विजय प्राप्त कर लेता ह। ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है कि योगी को मृत्यु से किसी प्रकार का भय भी नहीं रहता है। अर्थात् मरण–भय से मुक्त हो जाता है। वह पूर्णतयः निर्भय, निडर हो जाता है।

हठयोग साधना का अधिकारी पुरूष :–

हठयोग प्रदीपिका की टीकाकार ''ज्योत्सना, हठयोग के अधिकारी–पुरूष के बारे में कहती हैं कि ''जितेन्द्रिय, शान्त, भोगों में अनासक्त, निर्दोष और मुमुक्षु आज्ञाकारी साधक को ही इस हठयोगविद्या के उपदेश प्राप्ति का अधिकार है।'' हठयोगविद्या के अधिकारी पुरूष के बारे में याज्ञवल्क्य–स्मृति में उद्धृत् करते हुए कहा है। :–

विध्युक्तकर्मसंयुक्तः कामसंकल्पवर्जितः।

यमैश्च नियमैर्युक्तः सर्वसंग विवर्जित।।

कृतविद्यो जितः शान्तः सत्यधर्म परायणः।

गुरूशुक्षुषणरतः पितृमातृपरायणः।।

स्वाप्श्रमस्थः सदाचारो विद्वदभिश्च सुशिक्षितः।।

योगयाज्ञवल्क्य–संहिता 5/3

अर्थात् :– शास्त्रोक्त कर्मों से युक्त, निस्संग विद्यायुक्त, क्रोधरहित, सत्य, धर्म परायण गुरू सेवारत, मातृ–पितृ भक्त ग्रहस्थ आदि आश्रम में स्थित श्रेष्ठ आचारी और विद्वानों ने जिसको भली प्रकार शिक्षा दी हो, ऐसा पुरूष ही ''हठयोगविद्या'' का अधिकारी माना जाता है।

हठयोग सिद्ध पुरूष के लक्षण :–

षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद्दृढ़म्।

मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरतां।।

प्राणायामल्लाघ्वम् च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनि।

समाधिनां निर्लिप्तं च मुक्तिरेव न संशयः।।

घेरण्डसंहिता 1/10–11

अर्थात् :– हठयोग का साधक जब लगातार मांसपेशियों की दृढ़ता के लिए तथा नस नाड़ियों की शुद्धता के लिए षट्कर्म आदि क्रियाओं को करते हुए, प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा जब ध्यान में रत होकर विभिन्न मुद्राओं को स्थापित करता हुआ, अन्तरंग योग जैसे :– धारणा, ध्यान, समाधि में प्रवेश करके सिद्धस्थ योगी हो जाता है।

अश्वमेघ सहस्राणि वाजपेय शतानि च।

एकस्य ध्यानयोगस्य कलां नार्हन्ति षोड्शशीम्।।

विवेकमार्त्तण्ड–167

अर्थात :– विवेकमार्त्तण्ड में कहा है कि चित्त नियंत्रण की सिद्धि से युक्त हठयोगी के आगे हजारों अश्वमेध यज्ञों और सैकड़ों वाजपेयी यज्ञों का फल भी छोटा दिखायी दता है। हठयोग साधना में अभ्यासरत साधक प्राण के दस भेदों में केवल प्राण को विशेष रूप से प्राथमिकता देता है। जिसको साधक अपने नासिकाग्र से अपने श्वास–प्रश्वास के माध्यम् से प्राणायाम करता हुआ, अपनी साधना में लीन रहता ह, जिसके निःयोग करने से हठयोगविद्या का साधक सकल ब्रह्माण्ड को अपन वश में रखता है। 'सकल ब्रह्माण्ड' प्राण, अपान के मध्य में स्थित होता है।

प्राणों वे ब्रह्मा।।

श्रुतिशास्त्र, 'शतपथब्राह्म्ण' 8.1.1.6

अर्थात :– अतः श्रुति में प्राण को ब्रह्म कहा गया है।

प्राणविद्या महाविद्या।।

गोरक्षपद्धति 1/45

अर्थात् :– प्राणविद्या (प्राणायाम) को सर्व शक्तिशाली माना गया है। अतः जिसमें ऐसे लक्षण होते हैं, ऐसा ही साधक हठयोगविद्या का सिद्ध पुरूष कहलाने का अधिकारी होता है, क्योंकि चाणक्यनीति–दर्पण म भी कहा है। :–

दोहा :–

अधनी धन को चाहते, औ पशु होन वाचाल।

नर चाहत है स्वर्गको, सुरगण मुक्ति विशाल।।

अर्थात् :– धनहीन धन चाहते हैं, और पशु वचन, मनुष्य स्वग चाहते हैं, और देवता मुक्ति की इच्छा रखते हैं।

अधनाधनमिच्छन्तिवाचंचैवचतुष्पदाः।

मानवाः स्वर्ग मिच्छंतिमोक्षमिच्छंति देवताः।।

चाणक्यनीति–दर्पण 5/18

अर्थात् :– जिसके पास धन नहीं है, वह धन को चाहता है, और जो पशु है वह, वचन को, मनुष्य स्वर्ग को चाहते हैं, और देवता मुक्ति की इच्छा रखते हैं।

अतः स्पष्ट होता है कि हठयोग साधना की योगाग्नि से मनुष्य देवता–गणों की स्थिति में पहुँचकर भी मुक्ति करना चाहता है। जिसकी प्राप्ति केवल एक सिद्ध पुरूष को ही होती है।

हठयोग सिद्धि के प्रमुख लक्षण :–

1. देह की कृशता
2. मुखमण्डल पर प्रसन्नता
3. नाद की ध्वनि का प्रकट होकर, अद्भूत आनन्द का अनुभव करना
4. दोनों नेत्रों की निर्मलता
5. रोगों का अभाव

6. ब्रह्मचर्य की प्राप्ति

7. जाठराग्नि का प्रदीप्त होना

8. नाड़ियों में मल का अभाव

योगाभ्यास हेतु उचित ऋतुकाल :–

वसन्ते शरादि प्रोक्तं योगारम्भं समाचरेत।

तथा रोगी भवेत सिद्धो रोगान्मुक्तो भवेद ध्रुवम्।।

अर्थात् :– योगाभ्यास का प्रारम्भ बसंत और शरद् ऋतुओं के शुरूआत में ही करना उत्तम होता है। योगाभ्यास का प्रारम्भ करने वाले साधकों के लिए यह अतिआवश्यक है। इन ऋतुओं में योगाभ्यास की साधना प्रारम्भ करने से सभी रोगों की निवृत्ति और योगबल में वृद्धि होती है। घेरण्ड, ऋषि के मतानुसार अन्य ऋतुओं में योगाभ्यास प्रारम्भ करना साधक को रोग से ग्रसित भी कर सकता है। बसंत और शरद् ऋतुकाल में ही योगाभ्यास प्रारम्भ करके तत्पश्चात् ही अपनी यौगिक क्रियाओं का अभ्यास नियमित रूप से साधने का भरपूर प्रयास किया जा सकता है। अर्थात् अनुभव हो जाने के उपरान्त हर एक ऋतुकाल में योगाभ्यास करने का लाभ ही लाभ होता है।

योगाभ्यास के लिए उचित स्थान, देश, काल, वातावरण :– योगाभ्यास के लिए स्थान सुन्दर प्रदेश में स्थित हो, वन में, राजधानी में और अत्यन्त परिचितों के बीच में रहकर योगाभ्यास नहीं करना चाहिए। इससे यौगिक सिद्धि को हानि पहुँच सकती है। दूर वन में अपनी सुरक्षा संदेहास्पद रहती है। दूर देश में किसी का कोई भरोसा एवं विश्वास भी नहीं होता है। राजधानी में अधिक ध्वनि प्रदूषण आर अत्यधिक प्रकाश के कारण योग साधना नहीं हो सकती है। इन तीनों स्थानों को योग साधक निषिद्ध समझते हैं।

इसके विपरीत अच्छे राज्य में, जहाँ धर्मात्मा राजा का राज्य हो, जहाँ भोज्य पदार्थों व फल–सब्जियों की काफी मात्रा में प्रचूरता हो, बेकार के उपद्रवों से रहित, ऐसे स्थान पर साधक अपनी कुटिया बना कर रह सकता है, और अपनी योग साधना का अभ्यास शुरू करता रहे। ऐसे राज्य की सीमा के अन्दर अपनी कुटिया का निर्माण करना अत्तिउत्तम माना गया है। जिसमें कुटिया की प्राचीर के पास ही कूप या तालाब आदि की भी व्यवस्था होनी चाहिए, ताकि पीने के पानी, भोज्य पदार्थों को बनाने तथा पकाने और साफ–सफाई करने की सुविधा योगसाधक को हो, जिसके फलस्वरूप कम से कम श्रम में अधिक समय की बचत भी हो। कूप और तालाब का अति दूर होना, साधना में पानी की पूर्ति भी बाधक बन सकती है। साधना स्थल न अधिक ऊँचा हो और न अधिक नीचा हो, जिससे योग साधक अथवा अभ्यासी को अपनी साधना करने में बिना श्रम के कम से कम समय में साधना बहुत ही सरल आसान ढ़ग से हो सके। अतः गोबर से लिपी–पोती जगह, कीट–पतंगादि से रहित और शान्त व एकांत स्थान पर ही याग साधना लाभकारी होती है।

हठयोग साधना में पथ्य–अपथ्य का विचार :–

सुस्निग्धमधुताहारश्चत्तुर्याराविवर्जितः।

भुज्यते शिव संप्रीत्यै मित्ताहारः स उच्यते।।

हठयोगप्रदीपिका 1/58

अर्थात् :– विशेषकर योगियों के लिए मित्ताहार के बारे में कहते हैं कि भली प्रकार से स्निग्ध 'चिकनाहट वाला' और मधुर भोजन हठयोग के साधक को करना चाहिए। योगी को हमेशा मधुर भोजन ही करना चाहिए। अर्थात् ऐसा भोजन जिसमें तिखापन न हो, चटपटा, मिर्ची–मसाले से भरपूर, खट्टा, कड़वा, कषैला, ज्यादा पक्का हुआ, भोजन नहीं

करना चाहिए। योगी को अपने पेट के चार भाग में से दो भाग में अन्न से पूर्ण करना चाहिए और बाकी एक भाग को जल के लिए तथा अन्तिम भाग में प्राण दायिनीशक्ति वायु के लिए ही खाली रखना अतिआवश्यक हो जाता है।

हठयोग की सिद्धि के लिए साधकों को हमेशा के लिए मदिरा, मांस, मछली आदि से बहुत दूरी बनाऐं रखनी अतिआवश्यक होती है। इनमें आदमी की प्रवृत्ति तामसिक हो जाती है। तामसिक प्रवृत्ति का व्यक्ति योगी कभी भी नहीं बन सकता है, क्योंकि व्यक्ति की तामसिकता से मन अशान्त बना रहता है। बुद्धि, नष्ट–भ्रष्ट हो जाती है। हठयोग साधना में प्रवृत्त योगो को केवल सात्त्विक भोजन सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। ऐसा भोजन जिसमें दूध, दही, पनीर, घी 'धृत्त', अन्न, रोटी के रूप में तथा फल एवं सब्जियों का भरपूर मात्रा में सेवन किया जाता है। ऐसा भोजन पूर्ण रूप से सात्त्विक भोजन होकर साधक को सर्व गुण सम्पन्न माना जाता है। हमारा शरीर भी सात्त्विक प्रकृति का होकर हमेशा सत्कार वाले कर्म को करता है। मन शाँत रह कर सरलता पूर्वक अपने वश में रहता है। बुद्धि भी दिन–प्रतिदिन कुशाग्र होती चली जाती है।

कट्वम्लतीक्ष्णलवणोंष्णहरीतशाकसौवीरतैलतिलसर्षपमद्यमत्स्यान।

आजादिमांसदधितऋकुलत्थ कोतपिण्याकण्याकहिंगुलशुनाद्यमपश्यमाहु।।

हठयोगप्रदीपिका 1/59

अर्थात् :– योगियों के लिए बकरी का माँस, दही, बेर, खल, हींग, लहसुन, सलज़म, गाज़र और मादक द्रव्य और उड़द की दाल आदि इन सब चीजों का पूर्णरूपेण निषेध रखी गई हैं।

अहितकारी भोजन :–

भोजनमहितं विद्यात्पुनरस्योष्णीकृतं रूक्षम्।

अति लवणमम्लयुक्तं कदशनशाकोत्कटं वर्ज्यम्।।

हठयोगप्रदीपिका 1/60

अर्थात् :– अग्नि के संयोग से पुनः भोजन को गर्म करना, जैसे :– दाल, चावल, रोटी को दोबारा गर्म करके करारी करके रोटी को खाना, ऐसा करने से भोजन की पौष्टिकता समाप्त हो जाती है। रूखा और सूखा भोजन कभी भी नहीं करना चाहिए। भोजन में जूस और धृत्त आदि की चिकनाहट का होना भी परमावश्यक माना गया है। भोजन में लवण आदि की मात्रा से बिल्कुल रहित होना चाहिए। लवण, सरसों, अम्ल, उग्र, तीक्ष्ण, रूखा भोजन व अधिक मात्रा में भोजन नहीं करना, अत्यन्त निद्रा और अधिक बोलना, यह सब त्याग देना चाहिए। स्कंदपुराण में कहा है कि कटु, अम्ल, लवण इन को त्याग दें, और नित्य प्रतिदिन दूध का भोजन करें। अम्ल से युक्त पदार्थ भी त्यागने योग्य हैं। योगीजन को केवल शास्त्र विहित भोजन करना ही अतिउत्तम होता है। इसके अतिरिक्त केवल मात्र सत्तु, भूने हुए अन्न आदि पर ही निर्वाह न करें।

हठयोग साधना के साधक तत्त्व :–

हठयोग में छः तत्त्व को साधना में साधक (सहायक) के रूप में माना गया है। इनके अभ्यास से योग साधक को सिद्धि की प्राप्ति होने में सहायता मिलती है।

1. **उत्साह** :– स्वात्माराम ने उत्साह को योग साधना में प्रथम साधक तत्त्व के रूप में यहाँ उल्लेखित किया है। यदि साधक में अधिक उत्साह है, तो उसमें अधिक से अधिक कार्य करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। उत्साह से व्यक्ति का आत्म विश्वास सुदृढ़ होता है। यदि व्यक्ति का आत्म विश्वास सुदृढ़ है, तो वह कठिन से कठिन बाधा

को भी आसानी से समाधान कराके निपटा सकता है। उत्साह हमारे स्वास्थ्य का भी प्रतीक माना जाता है। उत्साह के द्वारा हमारी कई नलिका विहीन ग्रन्थियाँ जैसे :– एड्रीनल, थाईराईड ग्रन्थियाँ आदि प्रभावित होती है, और उनके फलस्वरूप हमारा रक्त परिसंचरण व पाचन क्रिया भी सुचारू रूप से कार्यरत रहती है। यदि साधक की यह सब क्रियाऐं ठीक हैं, तो उसको ध्यान लगाने में सहायता मिलती है।

2. **साहस** :– साहस को भी स्वात्माराम ने योग साधना में द्वितीय स्थान पर योग का साधक तत्त्व माना है। जिस साधक में साहस होगा तो उसमें कभी भी नकारात्मक भाव उत्पन्न ही नहीं होगें। साधना काल में यदि साधक साहस से प्राणायाम, ध्यान आदि क्रियाऐं करता है, ता उसे निश्चित रूप से अपनी साधना पर विश्वास हो करके, सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है, क्योंकि कई साधक तो ध्यान के समय कोई अद्‌भूत चीज़ के दर्शन कर लेने पर घभराते हैं, और अपनी योग साधना से सदा के लिए मुंह ही मोड़ लेते हैं। परन्तु यदि व्यक्ति में साहस है, तो वह उस अद्‌भूत शक्ति से प्रेरणा ले करके और अधिक से अधिक समय तक अपने ध्यान में मग्न रहने का अभ्यास की साधना कर लेता है। इस प्रकार से साहस भी योगमार्ग में साधक के लिए आवश्यक होता है।

3. **धैर्य** :– धैर्य भी योगमार्ग में सहायक तत्त्व है, क्योंकि धैर्य के बिना साधक योगमार्ग में आगे बढ़ ही नहीं सकता है। प्रायः यह देखा गया है कि कई साधक साधना करते रहते हैं, लेकिन उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। ऐसे में उनको निराशा हो जाती है, और अपनी योग साधना करना ही छोड़ कर, सांसारिकता में प्रवेश कर लेते हैं। इसके विपरीत जिस व्यक्ति में धैर्य की भावना सुदृढ़ हो तो, ऐसा योग साधक व्यक्ति कभी भी अपनी साधना को नहीं छोड़ता है, क्योंकि उसको मालूम है कि धैर्य 'धीरज़' का फल हमेशा मीठा ही होता है, और ऐसा योग साधक अपनी साधना में लगा रहेगा। धैर्यवान साधक को ऐसा महसूस होता है कि ईश्वर मेरी परीक्षा ले रहा है। इस प्रकार धैर्य शील साधक इस बात से प्रेरणा लेकर चलता है कि ईश्वर मेरी परीक्षा ले रहा है। ऐसा मानते हुए धैर्यवान साधक अपनी साधना में और अच्छी तरह से एकजुट हो जाता है।

4. **यथार्थ ज्ञान** :– यथार्थ ज्ञान भी योगमार्ग में सहायक होता है। यथार्थ ज्ञान अर्थात् मृग तृष्णा के जल के तुल्य विषय मिथ्या है, और ब्रह्म ही सत्य है। यही वास्तविक सत्य ज्ञान रूप तत्वज्ञान ही है। साधक को यह भी ज्ञान होना चाहिए कि, भाई–बहन, माता–पिता, सगे–सम्बन्धियों से भी एक लगाव एवं मोह उत्पन्न होता है। यहाँ तक की अपने मन के द्वारा भी विषयों का ग्रहण करना भी अपने आप को बंधन में बांधना है। मान–सम्मान, प्रतिष्ठा, धन, वैभव यह सब एक भ्रम ही है। केवल ईश्वर ही सत्य है। यह सब साधक को ज्ञात होना चाहिए और इन्हीं सब बातों को जान कर समझना चाहिए कि ब्रह्म ही सत्य है, और मृग तृष्णा जल के तुल्य मिथ्या ही है। ऐसा आधार मान कर साधना करनी चाहिए।

5. **संकल्प** :– संकल्प से योग का मार्ग सुगम व सरल होता है। जिस साधक में संकल्प भी विराजमान है, ऐसा साधक ईश्वर को शीघ्र प्राप्त कर लेता है। यदि साधक को यह संकल्प की लग्न लग जाए कि मैंने ईश्वर को ही पाप्त करना है, तो वह साधक योगमार्ग को शीघ्र–अतिशीघ्र पार करके भगवान से साक्षात्कार कर लेता है। कहा भी है कि जो संकल्प को दृढ़ता से कर लेता है, तो समझो कि उसका काम तो संकल्प लेने से ही हो गया।

6. **लोकसंग का परित्याग** :– अन्तिम साधक तत्त्व का वर्णन करते हुए स्वात्माराम जी कहते हैं कि साधक को लोक संग का परित्याग करना चाहिए। अर्थात् अपने सगे–सम्बन्धियों व रिश्तेदारों तथा जानकारों से दूर ही रहना चाहिए, क्योंकि इनसे सम्पर्क स्थापित करने से अपनी योगसाधना में बाधा उत्पन्न होती है। अतः इनसे न मिलना ही योग में साधक माना गया है, क्योंकि इन सबसे मिलने से मोह, ममता, लगाव, सांसारिकता में लिप्त होना होता है। ऐसी पूरी–पूरी संम्भावना इनमें पाई जाती है। जिससे साधक अपनी आगे की योग यात्रा को नहीं कर पाता

है। अतः योगमार्ग में आगे बढ़ने के लिए योग साधक को लोक संग का परित्याग कर देना चाहिए।

इस प्रकार साधक तत्त्वों को जान कर साधक अपनी योग साधना को और अधिक सुचारू रूप से पूर्ण का सकता है। साधक तत्त्व के सम्बन्ध में स्वात्माराम कहते हैं कि साधक तत्त्वों को अपनाकर साधक का योगमार्ग में प्रवेश सुगम हो जाता है, तथा वह योगमार्ग में आने वाली कठिनाईयों को भी आसानी से सुलझा लेता है।

हठयोग साधना में बाधक तत्त्व :–

स्वात्माराम ने हठयोग प्रदीपिका में योग को नष्ट करने वाले छः तत्त्वो का वर्णन किया है। जिन्हें योग साधना मार्ग में बाधक तत्त्वों के रूप मे जाना जाता है। जैसे :–

1. **अधिक भोजन करना** :– अधिक भोजन करने वाले को बाधक तत्त्वों की श्रेणी में रखा जाता है। मन भोजन के सूक्ष्मतम् अंश से बनता है। यदि भोजन अशुद्ध हो तो, मन भी अशुद्ध हो जाता है। यही ऋषियों तथा मनोवैज्ञानिकों का कथन भी है। मन के विकास में भोजन की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। भोजन का मन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। साधकों को माँस, मछली, अण्डा, बासी, अस्वास्थ्य कर भोजन, प्याज़, लहसुन, मूली आदि का परित्याग करना करना चाहिए, क्योंकि यह पदार्थ काम, क्रोध आदि को उद्दीप्त करते है। भोजन सादा, मुदु, लघु, स्वास्थ्यवर्द्धक तथा पौष्टिक भी होना चाहिए। मदिरा तथा अन्य मादक द्रव्य पूर्णतः त्याग देने चाहिए।

   गीता में भी कहा है कि आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सःख और प्रीती को बढ़ाने वाले एवं रस युक्त, चिकने, स्थिर रहने वाले, मन को प्रिय खाद्य पदार्थ, सात्त्विक पुरूष को प्रिय होते हैं, परन्तु साधकों को पेट पर अधिक भार नहीं डालना चाहिए। अधिक भोजन के कारण ही अधिकाँशतः बिमारियाँ होती है। लोगों ने अपनी आवश्यकता से अधिक खाने का अपना दृढ़ स्वभाव बना लिया है। यह आदत उनमें बचपन से ही पड़ी हुई है। पेट पर अधिक भार डालने से शीघ्र ही निद्रा तथा आलस्य आ जाता है, जो कि यागमार्ग में बाधक है।

2. **अधिक श्रम** :–योगमार्ग में वही सफल है, जो आध्यात्मिकता से साधना करे और आध्यात्मिकता का सम्बन्ध बौधिकता व मानसिकता से भी है। बौधिकता एवं मानसिकता की स्थिति साधक तभी प्राप्त कर सकता है, जब साधक शारीरिक रूप से स्फूर्ति वाला हो तथा थका हुआ न हो। परन्तु जब साधक अधिक श्रम करने लगता है, तो उसे विश्राम की आवश्यकता होती है, और ऐसी अवस्था में साधक विश्राम ही कर पाता है। बौद्धिकता और मानसिकता के बारे म चिन्तन करने में उसका ध्यान ही नहीं जाता है। अतः अधिक श्रम भी योग के मार्ग में बाधक तत्त्व के रूप में ही माना है।

3. **अधिक बोलना** :– स्वात्माराम ने अधिक बोलना योगमार्ग में बाधक तत्त्व के रूप में ही स्वीकार किया है, क्योंकि अधिक बोलने से अपने रहस्य उज़ागर भी होते रहते हैं। जिसके फलस्वरूप व्यक्ति का हनन् भी होता है। वाक् इन्द्रिय, मन को अत्यधिक विक्षिप्त चंचल बनाती है, और आध्यात्मिक प्रगति में बाधा भी डालती है। मौन धारण द्वारा बोलने की आदत शनैः–शनैः कुछ कम होती जाती है। अतः अत्यधिक बोलने से जो शक्ति नष्ट होतो है, उसका संरक्षण कर ध्यानाभ्यास में लगाना चाहिए।

4. **नियम पालन में आग्रह** :– पूर्ण रूप से लीन होना, दृढ निश्चयी हाकर तल्लीन रहना, यह तत्त्व भी योगमार्ग मे बाधक है। नियम होना तो योगमार्ग में अच्छा तो है, परन्तु नियम का पानल करते समय बुद्धि से काम न लेना बाधक ही होता है।

   उदाहरणार्थ :– एक व्यक्ति का रोज का चार बज़े उठकर स्नान करने का नियम है, परन्तु सर्दी में यदि वह अपने नियम पर डटते हुए बर्फीली सर्दी में भी अपना नियम का पालन सुबहः चार बज़े स्नान करके करता है, तो

उसे ठण्ड लग जाएगी और बिमार पड़ जायेगा। इस प्रकार से अपने नियमों का अति ग्रहण करना भी योगमार्ग में बाधक तत्त्वों में आता है।

5. **अधिक जनलोक सम्पर्क** :– अधिक लोक सम्पर्क को भी साधना में बाधक माना गया है, क्योंकि यदि साधक अपने साथ लोक सम्पर्क को बढ़ाता है तो वह साधक विषयों के घेराव में आ जायेगा। जिसके फलस्वरूप वह दुनियाँदारी में ही उलझा रहेगा और परिणाम यह होगा कि वह अपनी यौगिक साधना नहीं कर पायेगा।

6. **मन की चचंलता** :– चचंलता को भी योगमार्ग में एक बाधक तत्त्व ही माना जाता है, क्योंकि चचंलता का अर्थ है कि मन का इधर–उधर भटका रहना। ऐसी भटकन को स्थिति में अपना मन अपने वश में ही नहीं रहता है। यदि योग साधक का मन भी चचंलता की अवस्था में रहेगा तो वह योग साधना से अवश्य ही भटक जायेगा, और उसकी साधना का परिणाम भी शून्य ही रहेगा। अतः योग साधक को अपना मन अपने नियन्त्रण में ही रखना परमावश्यक होता है। उसे मन को स्थिर करने के लिए प्राणायाम, मुद्राओं और बन्धों के साथ–साथ आसन और ध्यान लगाकर यौगिक विधियों के द्वारा मन को संयमित करना चाहिए। इससे मन पर एक सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार हठयोग प्रदीपिका में वर्णित 'साधक–बाधक' तत्त्वों को प्रकाशित करने का स्वात्माराम का उद्देश्य यही रहा है कि योग साधक को यह अच्छी तरह से मालूम हो जाये कि यह 'बाधक–तत्त्व' है, जिससे साधक योगमार्ग मे आगे नहीं बढ़ सकता है। हठयोगप्रदीपिकाकार ने योगसाधक को 'साधक–तत्त्वों' का भी ज्ञान करवाया है, जिनको अपनाकर साधक योगमार्ग में सफल हो जायेगा। हठयोग नाथयोग सम्प्रदाय का मार्ग है। जिस पर चलते हुए योग साधक (योगी) उच्चतम् स्थितियों को पहुँचता है।

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्चयते।

सूर्यचन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते।।

सिद्धसिद्धान्त–पद्धति 1/69

अर्थात् :– ह– हकार (सूर्य), ठ–ठकार (चन्द्र) इन दोनों स्वरों या नाड़ियों का मिलन हठयोग कहलाता है।

योअपान् प्राणयोरैक्यं स्वरजोरेतसोस्तथा।

सूर्श्याचन्द्र मसोर्योगो जीवात्मपश्मात्मनो।।

योगशिखोपनिषद 1/68–69

योगशिखोपनिषद में कहा है। अपानवायु और प्राणवायु की एकता कर लेना स्वरज रूपी महाशक्ति कुण्डलिनी का स्वरेत रूपी आत्म–तत्व के साथ संयुक्त कर लेना, सूर्य स्वर अर्थात् पिंगला नाड़ी और चन्द्र स्वर अर्थात् ईड़ा नाडो का संयोग करना तथा परमात्मा से जीवात्मा का मिलन योग है।

केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते।।

हठयोगप्रदीपिका 1/2

अर्थात् :– हठयोग की उच्च सिद्धि की अवस्था में राजयोग का प्रारम्भ स्वतः ही हो जाता है। अतः कहा जाता है कि हठयेाग की पूर्ण स्थिति राजयोग ही है। इसलिये हठयोगप्रदीपिकाकार ने ठीक ही कहा है कि हठयोग को केवल राजयोग के लिए उपदेशित् किया गया है।